

मैयाजी तथा दादीजी

माता-पिता के और अपने गोद लेनेवाले पिता रायसाहब के स्मरण के साथ-साथ मैयाजी के नाम से संबोधित जिस महिला ने मुझे माँ के जैसा ही स्नेह दिया उसका स्मृति-तर्पण भी आवश्यक है। मैंने पहले ही लिखा है कि मेरे जन्मदाता पिता का एक बड़ा भाई था जो विद्यार्थि-काल में ही अपनी बालविधवा पत्नी को छोड़कर दिवंगत हो चुका था। उस अबोध विधवा के जी को प्रसन्न करने के लिए मेरे पिता को उसकी गोद में पुत्र के रूप में पालन-पोषण को दे दिया गया था। सम्मिलित परिवार की यह विशेषता थी कि दुःख-संकट बाँट लिया जा सकता था। आज जिस प्रकार परिवार छोटा और केवल पति-पत्नी और स्वयम् के बच्चों तक सीमित होता जा रहा है, उसमें इस प्रकार की स्थिति को झेलना बहुत कठिन है। संयुक्त परिवार में बालक को चाचा, ताऊ, दादी, दादा आदि का जो प्यार मिलता है वह माता-पिता के प्रेम से कम नहीं होता। पिताजी का अजस्र प्यार तो अपने मातृहीन बालक पर विशेष था ही, पर मेरे पिताजी की जन्मदात्री माता, मेरी दादी, जो मेरे कालेज में पढ़ने के दिनों तक जीवित थीं, मेरे ताऊजी गयाप्रसादजी, मैयाजी के भाई हरिबक्सजी, जो हमारे यहाँ ही मैनेजर के रूप में रहते थे और जिन्हें मैं मामाजी कहता था तथा उनकी बहन उपर्युक्त मैयाजी आदि ने जो अशेष प्यार मुझे दिया था वह माता-पिता के सम्मिलित प्यार से किसी अर्थ में कम नहीं था।

मैयाजी मेरे लिए जितनी मृदुल थी, मेरी माँ के लिए उतनी ही कठोर थीं। वाल्यावस्था में विधवा हो जाने के कारण उनके स्वभाव में शायद वह कर्कशता आ गयी हो तो आश्चर्य नहीं। वे मेरी माँ को पुस्तक पढ़ते देखकर ही क्रुद्ध हो उठती थीं, अतः माँ उनके सामने पुस्तकों पर हाथ भी नहीं लगाती थी। झगड़ा भी तभी होता है जब दूसरा भी थोड़ा असहनशील हो। माँ, कैसी भी कटूक्ति हो, हँसकर या मौन रहकर सहन कर लेती थी, अतः कभी कलह की नौबत ही नहीं आती थी।

हरिवक्स मामाजी की तरह उनकी बहन, मेरी मैयाजी का स्वभाव भी कठोर था जिसे वैधव्य की पीड़ा ने सान पर चढ़ा दिया था। मेरे पिता और माता को

ज़िंदगी है, कोई किताब नहीं

वे अपने पुत्र और पुत्रवधू के रूप में ही देखती थीं और अक्सर मुझसे मेरे जन्मदाता पिता और माता की योजनाओं के बारे में पूछा करती। मैं भी जो कुछ सुनता था उन्हें सहज ही बता भी देता। एक बार माँ और पिताजी ने यह मंत्रणा की कि दुर्गापूजा के अवसर पर कलकत्ता जाने का नाम लेकर जगन्नाथ पुरी तीर्थाटन को चलेंगे। उन्होंने तय किया कि यह बात मैयाजी तक न पहुँचे नहीं तो उन्हें भी जगन्नाथपुरी ले जाना होगा और सैर का सारा आनंद नष्ट हो जायगा। मैयाजी के पूछने पर मैंने सारी बातें जैसी सुनी थीं, उन्हें बता दीं। फिर क्या था! ज्वालामुखी फट पड़ा। मैयाजी प्रचंड हो गयीं और बुरी तरह माँ और पिताजी के लिए अनाप-शनाप बकने लगीं। उन्हें यह जानकर विशेष क्रोध हुआ कि पुरी जाने की बात, साथ न ले चलने की नीयत से, उनसे छिपायी गयी है। चुनौती देते हुए उन्होंने घोषणा कर दी कि देखें उनको लिये बिना कैसे मेरी माँ घर के बाहर पाँव भी रखती है। पिताजी ने डाँटते हुए मुझसे पूछा, 'तुमने यह बात मैयाजी को क्यों बता दी।' मैंने कहा 'वे पूछने लगीं तो मैं झूठ कैसे बोलता !' इस पर मेरी माँ ने मेरा पक्ष लेते हुए कहा 'बेटा! तुमने बिल्कुल ठीक किया। आगे भी कभी झूठ मत बोलना। मुझे गालियाँ खाना स्वीकार है, तुम्हारा झूठ बोलना स्वीकार नहीं।' मैं आज तक माँ के इस उपदेश का पालन यथाशक्ति करता आ रहा हूँ।

मैयाजी की याद आते ही मुझे माँ की याद जैसी ही पीड़ा होती है क्योंकि उनके स्वभाव में जो भी कठोरता के कंटक रहे हों, मेरे लिए तो उस बालविधवा के हृदय में अमृत के कलश ही भरे थे। मुझे गोद में बिठाकर अपने हाथ से दोनों समय भोजन कराने का उसका ही जिम्मा था। मेरी माँ तो जलचिकित्सा पर लिखी लुईकुने की पुस्तक को प्रमाण मानकर चलती और मेरे खाने-पीने में बहुत परहेज कराने का प्रयत्न करती, परंतु मैयाजी की चेष्टा रहती कि जितना अधिक वे मुझे खिला सकें, खिला दें। कभी कभी बिना भूख के भी वे मुझे फुसलाकर खिला देतीं जिसके परिणाम-स्वरूप मैं अस्वस्थ भी हो जाता और माँ की प्राकृतिक-चिकित्सा की कठोरता झेलनी पड़ती। इसका सब से दुःखद अंश मुझे वह लगता जब बुखार के बाद भी माँ की चिकित्सा-पद्धति के कठोर अंश, उपवास की पीड़ा सहनी पड़ती। मुझे बुखार से अधिक बुखार में भूखे रहने की यंत्रणा कष्ट देती थी जो बुखार के उतरने के बाद भी एक-दो दिन, जब वह तीव्रतम हो जाती थी, और चलती रहती थी कि कहीं बुखार लौट न आये। उस सात्विक तीव्र भूख की याद करके आज भी मन काँप उठता है।

जिंदगी है, कोई किताब नहीं

जैसा मैंने ऊपर लिखा है, मेरी दादी की मृत्यु मैयाजी की मृत्यु के कई वर्ष बाद 1941 में हुई थी जब मैं काफी समझदार हो गया था और बनारस कालेज में पढ़ने जा चुका था। दादी का प्यार मैयाजी के जैसा मुखर तो नहीं था परंतु दादी के लिए भी अन्य पुत्र-पौत्रों के बीच प्यार किये जाने की उम्रवाला तो मैं अकेला ही शिशु घर में था। मैं बचपन में आम का बहुत शौकीन था। वह मेरे भोजन कर चुकने पर हाथ में छिपाये हुए आम को मुझे दिखाकर कहती, 'एक रोटी और खा ले तो तुझे यह आम दूँ।' और मैं आम के लालच में एक रोटी और खा जाता। दादी कई बार मुझे खाने के लिए घर में देर से आने पर डॉट-फटकार भी देती और एक बार इस प्रकार डॉटे जाने पर जब मैं नीचे दुकान में अपने ताऊजी के पास रोता हुआ पहुँचा तो उन्होंने मुझे प्यार से दुलारते हुए जो वाक्य कहा वह मुझे ज्यों का त्यों अब भी याद है। उन्होंने कहा, 'अरे, तू बड़ा भाग्यशाली है जो तुझे दादी की डॉट खाने का अवसर मिला है। तेरी दादी की डॉट सुनने को तो मैं तरसता ही रहता हूँ।' दादी, दुकान के पुराने बही खातों के कागज से, बगीचे से मालियों को बुलाकर, धामे अर्थात् बड़ी-बड़ी टोकरियाँ बनवाती थी। घर में निरंतर कभी पापड़ के लिए और कभी धामा बनवाने को, मालियों की और नौकरों की चहल-पहल बनी रहती थी जिनके बीच मैं उछलकूद करता रहता था।